Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 19, Issue No. 3, April-2022, ISSN 2230-7540

जे. कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन, दार्शनिक विचार एवं उसकी विशेषताएँ

अशोक कुमार [1]*, डॉ. सुनिता यादव[2]

[1] शोधार्थी, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अवलर (राज.)

[2] शोध पर्यवेक्षक, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अवलर (राज.)

सारांश - *जे. कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1895 में आन्ध्रप्रदेष में मदनपल्ली नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम जिद्दू नारायण था। जिद्दू इनके कुल का नाम था। इनकी माता जिद्दू संजीवम्मा मृदुभाषाणी, धर्मपरायण और कृष्ण भक्त थी। ये अपने माता-पिता की आठवीं संतान थे। आठवीं संतान होने के नाते कृष्ण की तर्ज पर इनका नाम कृष्णमूर्ति रखा गया। इनकी विलक्षणता के कारण इनको आगामी विश्व शिक्षक के रूप में देखा गया। अतः इन्हें और इनके भाई नित्यानन्द को श्रीमती एनीबेसेन्ट ने 1909 में अपने संरक्षण में ले लिया। एनी बेसेन्ट के एक सहयोगी डब्ल्यू लीडाबीटर ने, जो दिव्य दृष्टि वाले व्यक्ति थे, ने देखा की कृष्णमूर्ति मे कुछ बात है जो उन्हें सबसे अलग करती है, तब कृष्णमूर्ति 13 वर्ष के थे। कृष्णमूर्ति जी के आकर्षण का प्रमुख कारण उनका व्यक्तित्व था। उनमें एक चुंबकीय आकर्षण था जो लोगों को अपनी ओर खींचता था। वास्तव में दर्शन ही मनुष्य को सच्चा सुख और शान्ति दे सकता है क्योंकि वह जीवन के शाश्वत प्रश्नों पर विचार करता है। विज्ञान जिन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ है, दर्शन उनका उत्तर सहजता से दे सकता है। दर्शन हमें जीने की कला सिखाता है। दर्शन के निर्देशन से हम एक सुखी, सन्तुष्ट तथा पवित्र जीवन बिता सकते है। अधिकांश विद्वानों ने जीवन में दर्शन तथा धर्म की आवश्यकता को महसूस किया है। मनुष्य अनन्त काल के ब्रह्माण्ड तथा उसकी समस्त वस्तुओं पर विचार करता आया है। वास्तव में यही विचार दर्शन है तथा इन विषयों पर विचार करने वाला व्यक्ति दार्शनिक है। प्रस्तुत अध्ययन जे.कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन और दार्शनिक विचारों से सम्बन्धित है। प्रस्तुत अध्ययन में कृष्णमूर्ति जी के सम्पूर्ण शैक्षिक दर्शन एवं दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है तथा इसके अन्तर्गत कृष्णमूर्ति जी के दर्षन की विशेषताएँ, उनके सत्य की खोज सम्बन्धी विचारों, सत्य के सम्बन्ध में विचार, कृष्णमूर्ति जी के आत्मज्ञान और ईष्वर सम्बन्धित विचार, और आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनावाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, परम मुक्तिवाद, मानवतावाद, तथा मानव एवं उसकी परमागति के सम्बन्ध में विचारों की व्याख्या की गई है। जिससे उनके सम्पूर्ण शिक्षा दर्शन और दार्शनिक विचारों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।*

कुंजी शब्द - *जे. कृष्णमूर्ति, शिक्षा दर्शन, दार्शनिक विचार एवं उसकी विशेषताएँ*

----------X----------

प्रस्तावना

जे. कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1895 में आन्ध्रप्रदेश में मदनपल्ली नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम जिद्दू नारायण था। जिद्दू इनके कुल का नाम था। इनकी माता जिद्दू संजीवम्मा मृदुभाषाणी, धर्मपरायण और कृष्ण भक्त थी। ये अपने माता-पिता की आठवीं संतान थे। आठवीं संतान होने के नाते कृष्ण की तर्ज पर इनका नाम कृष्णमूर्ति रखा गया। इनके पिता जिद्दू नारायण एक अवकाश प्राप्त सिविल सर्वेन्ट के साथ-साथ पुराने थियासौफिस्ट थे। इनकी माता का देहान्त हुआ जब इनकी आयु 10 वर्ष थी। इनकी माता का देहान्त होने के बाद इनके पिता जिद्दू नारायण, नारायणीय थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षता श्रीमती एनीबेसेन्ट के आमन्त्रण पर मद्रास के उड़यार में स्थित थियोसोफिकल सोसायटी परिसर में रहने लगे। इनकी विलक्षणता के कारण इनको आगामी विश्व शिक्षक के रूप में देखा गया। अतः इन्हें और इनके भाई नित्यानन्द को श्रीमती एनीबेसेन्ट ने 1909 में अपने संरक्षण में ले लिया। एनी बेसेन्ट के एक सहयोगी डब्ल्यू लीडाबीटर ने, जो

www.ignited.in

दिव्य दृष्टि वाले व्यक्ति थे, ने देखा की कृष्णमूर्ति मे कुछ बात है जो उन्हें सबसे अलग करती है, तब कृष्णमूर्ति 13 वर्ष के थे।

कृष्णमूर्ति जी के आकर्षण का प्रमुख कारण उनका व्यक्तित्व था। उनमें एक चुंबकीय आकर्षण था जो लोगों को अपनी ओर खींचता था। वह सार्वजनिक मंच पर कठोरता के साथ और कभी-कभार लगभग उग्र होकर बोल सकते थे किंतु व्यक्तिगत तौर पर या छोटे समूहों में बोलते हुए उनमें बड़ी हार्दिकता और स्नेह का भाव रहता था। उनकी शिक्षा उनके सत्य, मस्तिष्क, विचार, बुद्धिमत्ता, सावधानी, अनुभूति, स्वतंत्रता, प्रेम तथा स्व है। मनुष्य में "अथातो बह्म जिज्ञासा" है। मनुष्य अपूर्ण है, वह पूर्णता प्राप्त करने के लिए हर समय प्रयत्नशील रहता है। इस विकासक्रम में मनुष्य दर्शन से मार्गदर्शन प्राप्त करता है। दर्शन के अभाव में हमारा जीवन अज्ञान के अन्धकार में डूब जाएगा। दर्षन हमारा सच्चा दिशा निर्देशन कर हमें सच्चे मार्ग की ओर प्रेरित करता है। इसलिए मानव-जीवन में दर्शन का बहुत महत्व है।

दर्शन:- आज के वैज्ञानिक तथा भौतिकवादी युग में मनुष्य अपनी शान्ति खो चुका है, वह तनावग्रस्त है, ऐसी स्थिति में दर्शन का महत्व और भी बढ़ जाता है। दर्शन समग्र जीवन पर विचार करता है। विज्ञान ने हमें अनेक प्रकार के भौतिक सुख-साधन उपलब्ध कराए हैं परन्तु हमें सच्चा सुख और शान्ति देने में असमर्थ है। वास्तव में दर्शन ही मनुष्य को सच्चा सुख और शान्ति दे सकता है क्योंकि वह जीवन के शाश्वत प्रश्नों पर विचार करता है। विज्ञान जिन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ है, दर्शन उनका उत्तर सहजता से दे सकता है। दर्शन हमें जीने की कला सिखाता है। दर्शन के निर्देशन से हम एक सुखी, सन्तुष्ट तथा पवित्र जीवन बिता सकते है। अधिकांश विद्वानों ने जीवन में दर्शन तथा धर्म की आवश्यकता को महसूस किया है। मनुष्य अनन्त काल के ब्रह्माण्ड तथा उसकी समस्त वस्तुओं पर विचार करता आया है। वास्तव में यही विचार दर्शन है तथा इन विषयों पर विचार करने वाला व्यक्ति दार्शनिक है।

दर्शन का अर्थ:- दर्शन' शब्द संस्कृत की "दृश्" धातु से बना है। विद्वानों ने 'दृश' को इस प्रकार परिभाषित किया है "दृश्यते यथार्थ तत्व अनेन इति" अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ तत्व की अनुभूति हो, वही दर्शन है। दर्शन को मराठी में "तत्वज्ञान" कहते हैं। तत्व का अर्थ है सत्य या यथार्थ स्वरूप। इस प्रकार तत्वज्ञान का अर्थ है ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान। दर्शन शब्द का मूलार्थ 'ज्ञान-दृष्टि' से देखना है। मनुष्य बुद्धि की सहायता से जीव एवं जगत् के विषय में युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस दृष्टि से भी कहा गया है कि 'दर्शन' युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न है। दर्शन एक ऐसी 'दिव्य दृष्टि' प्रदान करता है जो आत्म दर्शन या 'तत्व-दर्शन' को सम्भव बनाती है। इस प्रकार दर्शन सम्पूर्ण जगत् के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण है जो उसमें सम्मिलित सभी विषयों की न केवल व्याख्या करता है, अपितु मानव को समुचित मार्ग पर चलने के लिए नवनिर्माण एवं पुनरुत्थान की ओर प्रेरित करता है। अतः जीव जगत् की व्याख्या और तद्नुरूप मानव-समाज की संरचना ही दर्शन है।

वास्तव में दर्शन की एक परिपूर्ण तथा निश्चित परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है क्योंकि दर्शन जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है। यदि हम विचारकों के दृष्टिकोण का सार देखे तो कह सकते है कि दर्शन जीवन और जगत् के सम्बन्ध में व्यक्तिगत दृष्टिकोण है जब व्यक्ति खुले मस्तिष्क तथा व्यापक परिप्रेक्ष्य में किसी समस्या पर विचार करता है और अपना दृष्टिकोण बनाता है तब हम कहते है कि समस्या के सम्बन्ध में अमुक व्यक्ति का यह दार्शनिक दृष्टिकोण है। दार्षनिक दृष्टिकोण जीवन के विभिन्न सम्बन्धों की समग्रता से निर्मित होता है। दर्शन चिन्तन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास करता है। संक्षेप में, दर्शन एक विवेकपूर्ण तथा गम्भीर गवेशणा है।

दर्शन एवं शिक्षा में सम्बन्ध:- दर्शन और शिक्षा का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी भी कार्य को पूरा करने के लिए दो बाते अत्यन्त आवश्यक है- योजना पक्ष और व्यवहार पक्ष। दर्षन योजना पक्ष है तथा शिक्षा व्यवहार पक्ष। दर्शन का काम है- जीवन के लक्ष्यों या उद्देश्यों को निर्धारित करना और विकास की चरम सीमा को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखना। इसके बाद शिक्षा उन लक्ष्यों तथा विकासों का प्रत्यक्ष सफल अथवा असफल रूप प्रस्तुत करती है। डॉ.एस.राधाकृष्णन का मत है- "दर्शन यथार्थता के स्वरूप का तार्किक ज्ञान है।" इसी कारण कहा जाता है कि शिक्षा और दर्शन एक दूसरे के घनिष्ठ सम्बन्ध रखते है प्राचीन काल से शिक्षा और दर्शन के सम्बन्धों को देखा जा सकता है। शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का हल जीवन दर्शन की सहायता से तलाश किया जाता है। दर्शन शिक्षा को प्रभावित करता है और शिक्षा दर्शन को। दर्शन अध्यापक के कार्य को सुगम बना देता है। यही कारण है कि प्राचीन समय में प्रत्येक दार्शनिक जैसे सुकरात, प्लेटो, अरस्तु तथा लॉक आदि महान् शिक्षाशास्त्री भी थे। अतः स्पष्ट है कि शिक्षा दर्शन पर आश्रित है। शिक्षा और दर्शन को रॉस महोदय ने इस प्रकार व्यक्त किया है-"दर्शन और शिक्षा एक सिक्के के दो पहलुओं के समान है। एक में दूसरा निहित है। दर्शन-जीवन का विचारात्मक पक्ष है और शिक्षा-क्रियात्मक पक्ष।

जे.कृष्णमूर्ति जी का दार्शनिक दृष्टिकोण:- जे.कृष्णमूर्ति एक स्वतंत्र विचारक थे, इसलिए, उन्होंने स्वयं को किसी मत, पक्ष या तंत्र के अनुरूप करने या स्वयं एक तंत्र बनने से मना कर

दिया। कृष्णमूर्ति जी के जीवन आदर्श अनेक परिस्थितियों और महापुरुषों से प्रभावित हुए। उन पर प्रकृति का अत्यधिक गहरा प्रभाव पड़ा। उनका मानना था कि संसार का हर मनुष्य प्राकृतिक सौन्दर्य से अवगत हो और उसे नष्ट करने के स्थान पर उसे सजोकर रखने का प्रयास करे। उनका मानना था कि शिक्षा न केवल किताबों से सीखना या तथ्यों को याद करनें मात्र नहीं है बल्कि शिक्षा का अर्थ है योग्य व्यक्ति बनना जो पक्षियों के कलरव को सुन सके, वृक्षों एवं पहाड़ों के सौन्दर्य का अवलोकन करके आनन्दमय हो सके। कृष्णमूर्ति जी पर यूरोप और इंग्लैण्ड के सामाजिक वातावरण का भी गहरा प्रभाव पड़ा। भगवान कृष्ण, प्रभु मेमेय और बुद्ध के विचारों से वह प्रेरित थे। इनके साथ ही वह एनीबेसेन्ट के विचारों से बच न सके क्योंकि एनीबेसेन्ट भी उदार महिला थीं और आध्यात्मिक उन्नति के लिए समर्पित थी। कृष्णमूर्ति जी के दार्षनिक विचार इन बिन्दुओं से स्पष्ट किए जाते है।

दर्शन:- कृष्णमूर्ति जी ने वास्तविक दर्शन के लिए बताया कि दर्शन वही है जो मनुष्य को सत्य के लिए प्रेम, जीवन के लिए प्रेम तथा प्रजा के लिए प्रेम उत्पन्न करता है। दर्शन से ही व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है कि मैं कौन हूँ। बाह्य तथा आन्तरिक जगत् में होने वाले स्पदंन का हर पल ज्ञान होना ही वास्तविक दर्शन है। कृष्णमूर्ति के अनुसार आत्मज्ञान अथवा आत्मबोध का होना ही वास्तविक दर्शन है।

सत्य:- जे .कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि जीवन को उसकी समग्रता में जीने से ही जीवन के मूल्यों का अनुभव प्राप्त होता है। वास्तव में जीवन अखण्ड होता है उसे खण्ड़ों में विभाजित नहीं करना चाहिए, लेकिन समस्त जीवन को अखण्डित जीवन जीने का आभास हो चुका है। इसलिए हमें अखण्ड जीवन ज्योति का दर्शन नहीं है लेकिन वह तो एक अनन्त प्रवाह है, यही वास्तविकता है, यही सत्य है और इसी की सत्ता है।

दुःख और दुःख भोग:- कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि दुःख और कष्ट दो पृथक बाते है। दुःख का सम्बन्ध मानसिक पीड़ा से है तो कष्ट का सम्बन्ध शारीरिक पीड़ा जिसे औषधि के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। परन्तु मानसिक पीड़ा दूर करने के लिए मनुष्य को स्वयं की मनोवैज्ञानिक स्थितियों को पूरी तरह से जानना होता है। मनुष्य के भूत और भविष्य की यादें ही दुःख का कारण होती है।

भय:- कृष्णमूर्ति जी भय को स्वयं व्यक्ति के मन का एक गम्भीर रोग मानते हैं जो व्यक्ति के जीवन को पूरी तरह से प्रभावित कर देता है। वास्तव में भय का कारण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली प्रतियोगितायें और उनसे जुड़ी अनिश्चियतायें ही होती है। व्यक्ति अपना जीवन एक खिचीं हुई लाइन पर ही चलाना पसन्द करता है। जब इस लाइन में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होने का संकेत मिलता है या फिर अनिश्चितता होने की संभावना का भाव होता है तो वह भयभीत हो जाता है।

मृत्यु:- कृष्णमूर्ति जी का मृत्यु के बारे में कहना है कि मनुष्य मृत्यु से इसलिए भयभीत रहता है कि उसे जीवन के अर्थ का ज्ञान ही नहीं है इसलिये मनुष्य ठीक से मरना भी नहीं सीख पाये है। जब मनुष्य अपने विचारों, वासनाओं, अनुभवों आदि से नाता तोड़ देता है और अपने अहंकार में रहता है तो वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार की मृत्यु में ही वास्तविक जीवन का प्रारम्भ होता है।

युद्ध और हिंसा:- युद्ध और हिंसा का मनुष्य से उतना ही पुराना सम्बन्ध है जितना कि इस पृथ्वी का उदय। युद्ध प्रायः शक्ति प्रदर्शन, पद की प्रतिष्ठा, धन अथवा वासना के कारण होता है। युद्ध और हिंसा नामक रोग किसी ध्वज के प्रति या राष्ट्रवाद की प्रेरणा से किया गया होता है। वास्तविकता में अहिंसक व्यक्ति वही है जो अपने मन की सभी विभाजनात्मक प्रवृत्तियों को सही प्रकार से जानकर आत्मज्ञानी हो गया है।

आत्मा का स्वरूप:- कृष्णमूर्ति के आत्मा के सम्बन्ध में विचार भारतीय दर्षन में आत्मा के स्वरूप से एकदम भिन्न है। उनका मानना है कि सामान्यतः जिसे मनुष्य आत्मा कहता है वह उसका अहंकार होता है। आत्मा मनुष्य की सभ्यता, संस्कृति, अपेक्षा और आकांक्षा का ही परिणाम है। आत्मा के बारे में संसार में ऐसा विचार बन गया है कि वह इस भौतिक शरीर जो मरता है, नष्ट होता है, कोई अमृत्व है जो अधिक महान है, व्यापक है, अक्षय है, अमर है। अतः कृष्णमूर्ति जी की दृष्टि में आत्मा शब्द एक प्रकार का विचार है।

ज्ञान और प्रजा:- सोचने व समझने की क्षमता होने के कारण मनुष्य सभी जीव-जन्तुओं में श्रेष्ठ है। अपनी वैचारिक क्षमता के कारण मनुष्य ने बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कारों, गोपनीय सिद्धान्तों और काव्यों की रचना की। ज्ञान को परिभाषित करते हुए कृष्णमूर्ति ने कहा कि जब कोई अनुभूति होती है तो ज्ञान उपजता है। ज्ञान अनुभव प्रसूत है जो स्मृतियों के रूप में मस्तिष्क में संचित रहता है। उन्होंने ज्ञान के तीन रूप निर्धारित किये है-वैज्ञानिक ज्ञान, सामूहिक ज्ञान और व्यक्तिगत ज्ञान। कृष्णमूर्ति जी का कहना था कि यदि मनुष्य में प्रज्ञा है तो वह ब्रह्माण्ड के सौंदर्य की अनुभूति कर सकता है अतः ज्ञान का उपयोग प्रज्ञा के द्वारा होना चाहिए।

प्रेम:- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'प्रेम' शब्द घोर दूषित हो गया है, क्योंकि प्रेम व्यक्ति की वासनाओं, आकांक्षाओं, कामवृत्तियों के बोझ में दब कर रह गया है। परन्तु कृष्णमूर्ति ने प्रेम को एक

www.ignited.in

अलग प्रकार से परिभाषित किया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि प्रेम एक विलक्षण चीज है इसे जब तक विचार और वासना के धागे से न पिरोया जाये तब तक वह प्रेम नहीं है।

ईश्वर:- ईश्वर की सत्ता को न सिर्फ भारत में बल्कि पाश्चात्य देशों में भी स्वीकार किया गया है। जो दर्शन ईश्वर का निशेध करते हैं लेकिन फिर भी उन्होंने ऐसी सत्ता का अस्तित्व स्वीकार किया है जो सृष्टिकत्ता है। सृष्टिवादी दर्शन में ईश्वर को सृष्टि का कारण बताते हुए उसे सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में स्वीकारा गया है। कृष्णमूर्ति जी ने ईश्वर की सत्ता को तो नहीं नकारा है बल्कि उन्होंने अनुभूति के विचारों को सम्प्रेषित न करने की बात कही है।

स्वतंत्रता:- कृष्णमूर्ति जी के अनुसार जब हम किसी भी प्रकार से दूसरों अथवा दूसरी चीजों पर निर्भर नहीं होते हैं और अपनी इच्छानुसार चिन्तन-मनन करके कार्य करने की अवस्था का स्वतन्त्रता की अवस्था कहते हैं जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना कम करता है। उसी मनुष्य को सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता का अनुभव होता है, जो संवेदनशील, मेधावी और अवबाधन की क्षमता अपने पास रखता है। कृष्णमूर्ति के अनुसार स्वतंत्रता के लिये बहुत बड़ी विलक्षणता की आवष्यकता होती है। स्वतंत्र होने का अर्थ ज्ञानवान होने से लगाया जाता है।

कामवृति, ब्रह्मचर्य और सृजनशीलता:- कृष्णमूर्ति ने कामवासना को एक ऐसी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकता स्वीकारा है जिसे दूर करना सम्भव नहीं है, फिर भी इसके विरुद्ध व्यक्ति ने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके इसे और अधिक कठिन बना दिया है। इसी कारण मनुष्यों में अनेक शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विकार उत्पन्न हो जाते है। दमित कामवासना जीवन के लिए अभिशाप होती है इसलिए सहज जीवन जीने में बाधा डालती है। कृष्णमूर्ति के अनुसार वास्तविक ब्रह्मचर्य के दमन का परिणाम नहीं है बल्कि विचारकर्ता की समाप्ति का परिणाम है। ऐसा ब्रह्मचर्य ही सर्जनशीलता को जन्म देता है जो मानव जीवन को सुखी एवं आनन्दित करता है।

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है कि कृष्णमूर्ति जी का दर्शन मानसिक क्रान्ति पर आधारित था। बुद्धि की प्रकृति, ध्यान और समाज में सकारात्मक परिवर्तन किस प्रकार लाया जा सकता है, इस पर उन्होंने अनेक प्रवचन दिए। अपनी मसीहाई छवि को अस्वीकृत करके उन्होंने उस धार्मिक संगठन को भंग कर दिया, जो उन्हीं को केन्द्र में रखकर बनाया गया था

सत्य की खोज:- अदृष्य ईश्वर, मंदिर और पवित्र स्थान तब तक पर्याप्त है जब तक हम साधारण श्रद्धालु हैं और ईश्वर की आराधना अपने जीवन के अगं के रूप में करते है। लेकिन, हम किसी प्रबुद्ध के पास तब जाते है जब हमारे अंदर कोई विशिष्ट खोज जिज्ञासा जागती है। हम इसे ईश्वर से साक्षात्कार या सत्य की खोज कुछ भी कह सकते है। सत्य को खोजने के लिए हमें मन की ओर जाना होगा और अपनी खोज की पद्धति को वहाँ स्थापित करना होगा। मन के साथ-साथ हमें सत्य की खोज के लिए बुद्धिमता का प्रयोग भी करना होगा। अर्थात् सत्य की खोज करनी है तो मन व बुद्धि के स्तर पर मनन करना चाहिए। सत्य की खोज के सम्बन्ध अनेक दार्शनिकों ने अपने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए।

सत्य के सम्बन्ध में विचार:- जे.कृष्णमूर्ति एक सत्यान्वेशी के रूप में अपना सारा जीवन मनुष्य को उसके प्रतिबन्धन और स्वातन्त्र्य की सम्भावना के प्रति सचेत करने के लिये समर्पित किया। इसके लिये उन्होंने निरन्तर व्याख्यान एवं लेखों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किये। सत्य के सम्बन्ध में जे.कृष्णमूर्ति ने अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त किए है-

- सत्य की अपनी ही ऊर्जा होती है जो यथार्थ या हकीकत का रूपातंरण कर दे, जो कि मेरी कड़ीशनिंग है, जो कि मेरा पूर्ण-मूल-मनोवैज्ञानिक रूपांतरण है। सत्ता या सत्ता से जुड़ा माहौल व्यक्ति को सत्य तक नहीं ले जा सकता।
- सत्य कुछ निर्णायक सी, स्थिर जड़ सी कोई वस्तु नहीं है जिसके नीचे आसरा मिल सके। अर्थात् सत्य को स्थिर नहीं किया जा सकता वह निरन्तर गतिशील है।
- यदि व्यक्ति सत्य की समझ रखता है और किसी का अनुगमन नहीं करते है तो आप निष्चित रूप से सत्य के शिष्य है। कृष्णमूर्ति जी चाहते थे की मनुष्य बगैर किसी शर्त के मुक्त होकर रहे।
- सत्य तो सतत गतिमान है, इसलिए समय या शब्द इसका पैमाना नहीं बन सकते, यह आपकी मुट्ठी में नहीं बंध सकता। सत्य को प्रेम करना सत्य को जानना है। सत्य को पुस्तकों में, मूर्ति पूजा में, मंदिरों में नहीं पाया जा सकता इसे तो कर्म में, जीने में, सोचने में पाया जाता है।
- सत्य को नियंत्रित नहीं किया जा सकता, यह स्वयं ही मनुष्य तक पहुँच जाता है।
- सत्य की तलाश करना सत्य को नकारना है।
- सत्य मनुष्य के भीतर ही समाहित होता है और यह एक कोने में छुपा होता है, सत्य का केवल अंतरात्मा के जरिए ही अनुभव किया जा सकता है।

आत्म ज्ञान के सम्बन्ध में विचार:- जे.कृष्णमूर्ति दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विषयों लेखक थे। वे मानसिक क्रान्ति मस्तिष्क की प्रकृति, ध्यान, मानवीय सम्बन्ध, समाज में सकारात्मक परिवर्तन कैसे लायें आदि विषयों के विशेषज्ञ थे। वे सदा इस बात पर जोर देते थे कि प्रत्येक मानव को मानसिक क्रान्ति की जरूरत है।

जे.कृष्णमूर्ति का मानना था कि धारणा या विष्वास, आत्म ज्ञान में बाधक है। कृष्णमूर्ति जी के अनुसार एक विश्वास या धारणा, चाहें वह धार्मिक हो या राजनीतिक, यह बिल्कुल साफ है कि धारणा या विश्वास हमारे आत्मज्ञान या हमें स्वयं को समझने में बाधक या रूकावट बनते हैं। यह एक ऐसी धुंधली परत की तरह है जिसके पार से, हम अपने आपको देखते हैं। यदि हम कोई भी विश्वास या धारणा नहीं रखे, जिन्हें कि हमारा मन मानता है, जिनके रूप में अपने को पहचानता है तो बिना किसी पहचान के वह मन अपने आप को वैसा ही देखने में समर्थ/सक्षम हो जाता है- जैसा कि वह वास्तविकता में, यथारूप है, और तब निश्चित ही हम खुद को समझने की शुरूआत करते हैं।

जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार-"आत्म ज्ञान की शुरूआत ही भय का अंत है।" अर्थात् मनुष्य के मन में किसी को लेकर यदि कोई भय है तो उसको समाप्त करने के लिए सबसे पहले आत्मज्ञान का होना आवश्यक है। आत्मज्ञान के लिए मनुष्य को स्वयं के मन का अवलोकन करना चाहिए। क्योंकि जब तक मनुष्य अपने मन का अवलोकन नहीं करते तब तक जो आत्मचिंतन और विश्लेषण मनुष्य करते हैं-चाहें वह मनोविश्लेषणात्मक हो या बौद्धिक एवं सैद्धांतिक आधार पर किया गया हो-वह बिल्कुल व्यर्थ होता है।

मनुष्य को जब 'स्व' के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। कृष्णमूर्ति जी के अनुसार आत्मज्ञान की प्राप्ति तथा 'स्व' के बारे में जानने में ध्यान एक प्रमुख भूमिका निभाता है। ध्यान किसी साध्य का साधन नहीं है यह साध्य और साधन दोनों है। जो है उसको देखना और उसके पार चला जाना ही ध्यान है। मन के भीतर वह ज्योति है, जो क्रिया मार्ग को अवलोकित करती है और इस ज्योति के बिना प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं है। ध्यान के द्वारा विचारों से मुक्ति मिलती है तथा सत्य को आनन्द के साथ जिया जा सकता है। ध्यान मन की वह अवस्था है, जिसमें मन प्रत्येक जीव को समग्रता पूर्वक देखना है। ध्यान वह माध्यम है जिसके द्वारा आत्मज्ञान को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

- **ईश्वर सम्बन्धी विचार:-** ईश्वर वह सर्वोच्च शक्ति है जिसे इस संसार का सृष्टा और शासक माना जाता है। अधिकांश धर्मों में परमेश्वर की परिकल्पना ब्रह्माण्ड की संरचना करने वाले से जुड़ी हुई है। जे.कृष्णमूर्ति ने ईष्वर के सम्बन्ध में बताया है कि-
- ईश्वर ने मनुष्य को नहीं बनाया, बल्कि ईष्वर का जन्मदाता तो खुद मनुष्य है। मनुष्य ने ईश्वर का आविष्कार अपने फायदे के लिए किया है। कृष्णमूर्ति जी के अनुसार ईश्वर एक विचार से ज्यादा कुछ नजर नहीं आता हैं, जो देश, काल और स्थान के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।
- जे.कृष्णमूर्ति जी कहते है कि जब हमारा मन विश्वास और अविश्वास दोनों से ही आजाद होता है, तब मन निश्चल होता है। केवल तभी संभावना बनती है जब ईश्वर संबंधी सत्य का बोध हो सके। आदि मानव बादलों के गरजने को ईश्वर का इषारा समझता था। कुछ अन्य मनुष्य पेड़-पौधों प्रकृति को भगवान मानते हैं। वह मानते थे कि ईश्वर की गूढ़ता की थाह ले पाना हमारे लिए असंभव है। ईश्वर के सत्य का अनुभव कभी-कभी तब होता है जब हम पूर्णतः मौन में होते है।
- ऐसे लाखों लोग हैं जो ईश्वर के संबंध में आपको सिखाने, बताने, समझाने के लिए उत्सुक है, लेकिन हमें पूरी जानकारी लेकर ही उनकी बात की मानना चाहिए। केवल तभी संभावना बनती है कि ईश्वर संबंधी सत्य का बोध हो सकें।
- ईश्वर के बारे में जानना-समझना आसान नहीं है। ईश्वर से संबंधित बातों को जानने समझने के लिए अत्यधिक चिंतन, मनन, खोजबीन की जरूरत है। ईश्वर को जानने के लिए सबसे पहले व्यक्ति को स्वयं को सारे पूर्वाग्रहों से मुक्त करना होगा। इस कार्य में दूसरा कोई आपका आधार नहीं बन सकता, आपको अपनी सहायता स्वयं करनी होगी, स्वयं ही ईश्वर को तलाषना होगा।
- जे.कृष्णमूर्ति जी कहते है कि एक आदमी जो ईश्वर में विश्वास करता है वह ईश्वर को नहीं खोज सकता। ईश्वर एक अज्ञात अस्तित्व है, और इतना अज्ञात कि हम ये भी नहीं कह सकते कि उसका अस्तित्व है। ईश्वर को जानने के लिए मन को समय से मुक्त होना होगा। जिसका अर्थ है कि मन को समस्त विचार और धारणाओं से मुक्त होना होगा।
- ईश्वर के प्रश्न पर कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि अगर ईश्वर है और धार्मिक ग्रंथों के अनुसार वह सर्वशक्तिमान, सुंदर, न्यायप्रिय और आनंददाता है, और अगर उसने अपनी ही छवि में मनुष्य को भी बनाया है, तो मनुष्य को भी उतना ही सुन्दर, न्यायप्रिय और शांत होना चाहिए।

www.ignited.in

- मनुष्य ईश्वर को इसलिए गढ़ता है ताकि वह अपनी चिंताओं, डर और अधूरी इच्छाओं का सामना करने से बचा रहे। वह एक ऐसा धार्मिक आश्रय चाहता है, जहाँ उसे यह यकीन हो कि कोई परम शक्ति है, जो दुःखों का नाश करती है, कामनाओं को पूरा करती है।
- ईश्वर को मानना तो बहुत आसान है। इस अनंत सत्य रूपी ईश्वर का अनुभव वही कर सकता है, जिसमें विचारों की मृत्यु हो चुकी है, जिसका मन और मस्तिष्क जीवन के सारे संघर्षों से मुक्त हो चुका है, जो अपने हृदय से स्वतंत्र हो।
- sकृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि भय मनुष्य को उलझाए रखता है। भय के दो मूल कारण है-विचार और दिमाग में समय की अवधारणा। जिसमें मन बीते हुए समय की स्मृतियों और आने वाले समय की चिंताओं के बीच झूलता रहता है। मात्र ईश्वर की अवधारणाएँ बना लेने का कोई अर्थ नहीं है।
- वर्तमान समय में, जब दिन-ब-दिन बाह्य रूप से असुरक्षा बढ़ रही है, तो स्वभावतः आंतरिक सुरक्षा के लिए भी लालसा तीव्र होती जा रही है। क्योंकि जब मनुष्य को बाहरी सुरक्षा नहीं मिल पाती है तो वह एक अवधारणा, एक विचार निर्मित कर लेता है, जिसे वह ईष्वर कहते है तथा वही अवधारणा मनुष्य की सुरक्षा बन जाती है।
- कृष्णमूर्ति जी कहते है कि, मनुष्य ने युगों-युगों से, विष्वास के द्वारा एक अवधारणा निर्मित की है जिसे ईश्वर कहा जाता है। मनुष्य के लिए ईश्वर नामक इस अवधारणा में विष्वास करना आवश्यक बन गया है, क्योंकि मनुष्य को लगता है कि जीवन एक दुखद प्रसंग है, निरंतर संग्राम, द्वंद्व, दुर्दशा का सिलसिला, जिसमें कभी-कभार प्रकाश, सौन्दर्य व उल्लास की चिंगारी दमक उठती है।
- कृष्णमूर्ति जी के विचार में ईश्वर को प्राप्त करने के लिए आप का मानस पूरी तरह से स्वतंत्र होना चाहिए, केवल तभी ईश्वर रूपी सत्य का पता लगाया जा सकता है, न कि किसी अंधविश्वास को स्वीकार करके या तथाकथित पवित्र पुस्तकों को पढ़ कर, या किसी गुरु के पीछे जाकर। जब आपका मन स्वतंत्र होता है, बाह्य प्रभावों तथा आपकी अपनी इच्छाओं व आकांक्षाओं से मुक्त होता है, तभी ईष्वर का पता लगाना संभव है।
- उनके अनुसार ईश्वर के बारे में जानना कोई सरल काम नहीं है। क्योंकि ईश्वर को पाना अत्यन्त कठिन, अत्यधिक श्रमसाध्य बात है। ईश्वर को समझने के लिए पहले हमें अपने मन को समझना होगा, जो बहुत कठिन है। क्योंकि मन बहुत पेचीदा है और इसे समझना सरल नहीं है।
- कृष्णमूर्ति जी कहते थे कि समस्या यह नहीं है कि ईश्वर होता है या नहीं, अपितु यह है कि मनुष्य ईश्वर का अन्वेशण किस प्रकार करें, और यदि वह अपनी इस खोज में स्वयं को सबसे मुक्त करले, तो वह अपरिहार्य रूप से उस यथार्थ को पा लेगा।
- यदि ज्ञात चेतन स्तर पर और अचेतन में भी पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तो मनुष्य ये कभी नहीं पूछेगा की ईश्वर है, अथवा नहीं, क्योंकि ऐसा मन अपने आप में ही अपरिमेय होता है; प्रेम की भाँति, इसकी अपनी चिरंतनता होती है।

इस प्रकार धर्म का सार पावनता है जिसका न तो धार्मिक संगठनों से कुछ लेना-देना है न ही उस मन से जो विश्वास में, धर्मनीति में फंसा और संस्कारित है। इसलिए ईश्वर को प्राप्त करने या उसे जानने के लिए सबसे पहले अपने मन को शुद्ध, शांत और भय से रहित रखना होगा।

आदर्शवाद के सम्बन्ध में विचार:- शिक्षा जगत् में जिन-जिन विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ उनमें आदर्शवादी विचारधारा समस्त दार्शनिक विचारधाराओं में अति प्राचीन है। आदर्शवादी ईश्वरीय सत्ता में विश्वास तथा जीवन में उच्चादर्शों को स्थान देता है। आदर्षवादी वह विचारधारा है जो यह मानती है कि अन्तिम सत्ता आध्यात्मिक या मानसिक है। आदर्षवाद के अन्तर्गत मानसिक तत्वों, सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् आदि शाश्वत मूल्यों जैसे विचारों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। आदर्शवाद में आधारभूत तत्व यह है कि संसार का उपादान कारण मन या आत्मा है। आदर्शवादी दार्शनिक 'आत्मा' और 'परमात्मा' के अस्तित्व में विश्वास रखते ? और उनका मानना है कि इनकी प्राप्ति मन एवं बुद्धि के माध्यम से संभव है। अर्थात् ईश्वर या शाश्वत सत्य को मन एवं बुद्धि के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

आदर्शवाद के सम्बन्ध में जे.कृष्णमूर्ति ने कुछ विशेष विचार व्यक्त नहीं किए, परन्तु आदर्शवादी जिन शाश्वत मूल्यों, सत्य, ईश्वर आदि की सत्ता को सर्वोच्च स्थान देते है, वहीं जे.कृष्णमूर्ति ने भी अपने विचारों में सत्य एवं ईश्वर को प्रमुख स्थान दिया है। जे.कृष्णमूर्ति जी ने आदर्शवाद की व्याख्या करते हुए कहा है कि दर्शन में आदर्शवाद आदर्शों की व्याख्या तो करता है किन्तु उसका मुख्य विषय आदर्श न होकर विचार है। इनका मानना है कि आदर्शवाद के अनुसार पदार्थ अन्तिम

सत्य नहीं है, पदार्थ का भौतिक रूप असत्य है, क्योंकि यह नाशवान है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में मानव का जीवन संघर्षपूर्ण, कलहपूर्ण एवं वैमनस्यता से परिपूर्ण हो गया है जिससे छुटकारा पाने के लिए आदर्शवादी विचारधारा का सहारा लेकर ही मुक्ति संभव है। जे.कृष्णमूर्ति कहते है कि आध्यात्मिक मूल्यों की अनुभूति होने पर ही बालक का आध्यात्मिक विकास सम्भव है। अतः शिक्षा का उद्देश्य बालक का आध्यात्मिक विकास करना है।

जे.कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि शिक्षा और जीवन के लक्ष्य की भाँति ही आदर्शवाद अपनी पृष्ठभूमि अदा करता हैं यह मानता हैं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है तथा व्यक्ति के भौतिक शरीर की अपेक्षा उसकी आत्मा अधिक महत्व रखती है। क्योंकि आत्म का वास्तविक स्वरूप विशाल है, विस्तृत है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य इसी आत्मा को पहचानना या बोध करना है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को अपने इसी वास्तविक स्वरूप की अनुभूति करना है। क्योंकि आत्मानुभूति के द्वारा ही हम वास्तविक सत्य के दर्शन कर सकते हैं, शिक्षा के द्वारा ही बालक का विकास संभव है।

प्रकृतिवाद के सम्बन्ध में विचार:- दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत प्रकृतिवाद अपने शुद्ध रूप से वैज्ञानिक विचारधारा पर केन्द्रित है। यह सम्प्रदाय केवल भौतिक ब्रह्माण्ड में आस्था रखता है। यह प्रकृति को सर्वोत्तम सत्ता के रूप में स्वीकार करता है। यह अध्यात्म को किसी भी प्रकार से कोई महत्व नहीं देता।

प्रकृतिवाद प्रकृति को पूर्ण वास्तविक मानता है। प्रत्येक वस्तु प्रकृति से पैदा होती है और अन्त में उसका उसी में विलय हो जाता है। प्रकृतिवाद एक ऐसा भौतिकवादी दर्शन है जो सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति के लिए प्रकृति को उत्तरदायी ठहराता है। इस दर्शन के अनुयायियों का ईश्वर की सत्ता, आत्मा की अमरता आदि पर विश्वास नहीं है।

प्रकृतिवादियों के अनुसार, मनुष्य इन्द्रियों एवं विभिन्न शक्तियों का समन्वित रूप है। यह सब प्रकृति का खेल है। ये नियम प्रकृति के स्वयं के नियम है। प्रकृति के नियम शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील है। प्रकृतिवादी प्रत्यक्ष ज्ञान का समर्थन करते है। जे.कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि प्रकृतिवाद, भौतिकवाद एवं यथार्थवाद का ही एक मिश्रित रूप है। उनका कहना है कि मानव की प्रकृति को समझा जाये जिससे की मानव के प्रति न्याय हो सके तथा वह अपनी सम्भावनाओं तक पहुँच सकें।

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार एक अच्छा शैक्षिक वातावरण बनाने में किताबों से अधिक प्रकृति-दर्शन का सृष्टि के निश्पाप, समग्र अवलोकन का महत्त्व है। नीला नभ, ऊँचे पर्वत, दौड़ते जल स्रोत, लहराते वृक्ष, तरह-तरह के प्राणियों को आश्रय देने वाली, फसलों की बहार उपजाने वाली, फल-फूलों का वैभव बिखरनेवाली यह धरती, ये प्रकृति के स्वयं-अनुषासन के प्रहरी मनुष्य को कितना कुछ सिखाते है।

जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार प्रकृति में विश्व की सर्वत्र व्यवस्था है। मानव समाज की अव्यवस्था या रोग मानव मन की उपज है। समाज में व्यक्ति-व्यक्ति की सीमाओं का टकराव अव्यवस्था फैलाता है। वे प्रकृतिवाद के प्रबल समर्थक थे। वे कहते थे कि मनुष्य नेक एवं सहयोगी स्वभाव का है यदि उसे किसी तरह के सामाजिक शोषण एवं दमन का शिकार न होना पड़े तो उसके इन स्वाभाविक गुणों का विकास और भी अधिक होगा। उसकी स्वार्थवृत्ति सभ्यता के विकास की प्रक्रिया में उसके सहज व्यक्तित्व की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के दमन के कारण पैदा होती है।

जे.कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि बालक की प्रकृति एवं समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान की जाएगी तभी वह व्यवहारिक एवं जीवनोपयोगी शिक्षा कहलाने का हक रखेगी। अतः मनुष्य की प्राकृतिक स्थिति को वरेण्य मानते हुए मानव की प्रकृति की ओर विचार को महत्वपूर्ण माना है।

प्रयोजनवाद के सम्बन्ध में विचारः- प्रयोजनवाद का अर्थ व्यवहारिकता यानी किसी काम की स्वीकार्यता से लगाया जाता है। इस मत को मानने वालों का कहना है कि बगैर मकसद के कोई काम नहीं होता अर्थात् हर कार्य के पीछे कारण होता है। प्रयोजनवादी सिर्फ व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखना ही उचित समझते हैं। उनके लिए ईश्वर, आत्मा, धर्म, इत्यादि का कोई महत्व नहीं है। प्रयोजनवाद का कहना है कि इस संसार में यथार्थ का ज्ञान संभव नहीं है। प्रयोजनवादी अंधविश्वास का विरोध करते है। वे विज्ञान में विश्वास करते हैं किन्तु यन्त्रवादी नहीं होते। प्रयोजनवाद में उपयोगिता को सर्वाधिक महत्व दिया गया है तथा सत्य का निर्धारण भी उपयोगिता के आधार पर ही किया गया है। वास्तव में प्रयोजनवाद ऐसे गतिशील एवं नशीले व्यक्तित्व को विकास करना चाहता है, जो साधन पूर्ण तथा साथी बन कर अज्ञात भविष्य के लिए विभिन्न मूल्यों का निर्माण करके सामाजिक दृष्टि से कुशल बन जाए इस प्रकार यह विचारधारा प्रचलित शिक्षा के विरुद्ध एक ऐसी क्रांति है जो बदलते हुए समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बालक को विकसित करना चाहती है तथा समाज को और अधिक उन्नतशील बनाने का प्रयास करती है।

www.ignited.in

जे.कृष्णमूर्ति जी प्रयोजनवाद के सम्बन्ध में कहते है कि यह एक ऐसी विचारधारा है जो किसी मूल्य, विचार, कार्य या सिद्धान्त को इस आधार पर स्वीकार करती है कि उसकी मानव-जीवन के लिए व्यावहारिकता है, उसकी कोई उपयोगिता है अर्थात् उसमें कोई प्रयोजन या फल छिपा हो। इनका मानना है कि वर्तमान में उसी ज्ञान का महत्व है, जिसका व्यावहारिक महत्व है। आज का युग प्रौधोगिकी का युग है, और आज हमें उसी के अनुरूप व्यक्ति एवं बालकों को तैयार करने की आवश्यकता है। क्योंकि इस सूचना तंत्र के युग में जो बालक एवं व्यक्ति जितनी शीघ्रता से सूचनाएँ प्राप्त कर लेगा वही उन्नति के शिखर पर विराजमान होगा। अर्थात् बालक को वही ज्ञान देना चाहिए जिस ज्ञान की उन्हें आवश्यकता है। जे.कृष्णमूर्ति जी ने प्रयोजनवाद को मानवीय दर्शन की संज्ञा दी है। उनका मानना था कि बिना कार्य के कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता है अतः शिक्षा में कार्य को विशेष स्थान दिया जाय। वर्तमान शिक्षा सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यवहार पर अधिक बल देती है।

यथार्थवाद के सम्बन्ध में विचार:- यथार्थवाद वस्तु के अस्तित्व सम्बन्धी विचारों के प्रति एक दृष्टिकोण है, जो प्रत्यक्ष जगत् को सत्य मानता है। यथार्थवादियों का मानना है कि जगत् में हम जो कुछ देखते, सुनते या अनुभव करते है, वह सब हमारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप में होते है। अतः जो कुछ प्रत्यक्ष है वही सत्य है। यथार्थवादी उन आदर्शों नियमों एवं मूल्यों को कोई महत्व नहीं देते है जिनका सम्बन्ध वर्तमान एवं व्यावहारिकता से नहीं है। शिक्षा में यथार्थवाद वस्तुवादी विचारधारा है, जो भौतिक विज्ञान और तकनीकी विकास की दार्शनिक परिणति है। यथार्थवादी दर्शन के अनुसार मनुष्य को वातावरण का ज्ञान होना चाहिए। उसे यह भी पता होना चाहिए कि वातावरण को परिवर्तित किया जा सकता है या नहीं। मनुष्य की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वह इस सृष्टि की वास्तविकता को स्वीकार कर ले और उसके परिवर्तनशील वातावरण के अनुरूप अपना कार्य करे। आधुनिक यथार्थवाद वैज्ञानिक यथार्थवाद कहलाता है। इसे आधुनिक दर्षन मानने में अतिषयोक्ति नहीं होगी क्योंकि यह विज्ञान का दर्शन है। इस दर्शन की मूल धारणा यह है कि यथार्थ तो जो कुछ है वह है ही, उसी का विवरण प्रस्तुत करना सत्य है। यथार्थ मानव मन की उपज नहीं है। सत्य मानव मस्तिष्क की देन है। यथार्थ मानव मस्तिष्क से परे की वस्तु है। उस यथार्थ के प्रति दृष्टिकोण बनाना सत्य कहलाता है, जो सत्य यथार्थ के जितना निकट होगा, वह उतना ही यथार्थ सत्य होगा।

जे.कृष्णमूर्ति जी का मानना था कि यथार्थवाद वह सिद्धान्त व विश्वास है जो जैसा जगत् दिखाई देता है, उसे वैसे ही रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार मानव शरीर भौतिक जगत् का ही अंग है तथा मन भौतिक शरीर का सूक्ष्म अंग है। यथार्थवादियों नेमन को सूक्ष्म शरीर माना है जो इन्द्रियों के माध्यम से शरीर को नियंत्रित करता है और शरीर भौतिक जगत् का हिस्सा है। अर्थात् सभी कुछ भौतिक जगत् में ही समाया हुआ है, भौतिक जगत् के बाहर किसी की कोई सत्ता नहीं है। जे.कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि चेतना ही भौतिक है उनका कहना है कि जिस प्रकार खैर एवं चूने के मूल से लाल रंग स्वतः उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार चेतना भी भौतिक तत्वों के मूल से ही शरीर में उत्पन्न हो जाती है। इनके अनुसार यथार्थवाद वस्तुवादी विचारधारा है जो कि भौतिक विज्ञान और तकनीकी के विकास की दार्शनिक परिणति है। उनका कहना है कि यह दृश्य जगत् एक संयोग मात्र नहीं है। उनके अनुसार विश्व विचारों पर आश्रित नहीं है क्योंकि विचारों का उदय मानव मन से हुआ है। यथार्थवाद व्यवहारों के अनुभव के बारे में कहते है कि हमारे अनुभव स्वतंत्र न होकर बाह्य पदार्थों के प्रति अनुक्रिया का निर्धारण करता है। क्योंकि अनुभव बाह्य जगत् से प्रभावित है तथा बाह्य जगत् की अपनी एक अलग वास्तविक सत्ता होती है।

व्यावहारिक जीवन को सफल बनाना ही सामाजिक यथार्थवाद का शैक्षिक लक्ष्य था। जे.कृष्णमूर्ति का कहना है कि शिक्षा में यथार्थवाद का उदय संकुचित, काल्पनिक एवं साहित्यिक शिक्षा के विरोध में हुआ। इनके अनुसार ज्ञानेन्द्रियजन्य ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान हैं जिस प्रकार शिक्षा में कृत्रिमता के विरोध स्वरूप प्रकृतिवाद आया, उसी प्रकार पुस्तकीय एवं अनुपयुक्त शिक्षा क्रम का विरोध करते हुए शिक्षा में यथार्थवाद का पदार्पण हुआ। यथार्थवाद इस उद्घोषणा के साथ आया कि शिक्षा वास्तविक जगत् की परिस्थितियों के अनुसार होनी चाहिए। मनुष्य को पहले मनुष्य बनना है देवता नहीं। मनुष्य बनने के लिए उसे समाज में सुखपूर्वक जीवन बिताना सीखना चाहिए। इस यथार्थवादी दृष्टिकोण ने शिक्षा के सम्पूर्ण स्वरूप को प्रभावित किया है। आज पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, मूल्यांकन, अनुशासन शिक्षक तथा शिक्षार्थियों की जो स्थिति है, उसके निर्माण में यथार्थवाद का महत्वपूर्ण योगदान है।

अस्तित्ववाद के सम्बन्ध में विचार:- अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य अनिर्णीत है तथा उसमें चुनाव करने की क्षमता है। अतः वह अपने स्वयं की प्रतीति के लिए निरन्तर प्रयास करता रहता है। सोरेन किर्कगार्ड इस विचारधारा के प्रमुख प्रवत्र्तक माने जाते है। वह व्यक्ति के मूल व्यक्तिगत अस्तित्व पर बल देते हैं। उनके अनुसार सत्य व्यक्ति के अपने अद्वितीय अनुभव में पाया जाता है। उनका मानना था कि व्यक्ति को चयन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता मिले और वह जो बनना चाहता है कि वह बनने के लिए स्वतन्त्र हो। अस्तित्ववाद के दूसरे प्रमुख प्रवर्तक

मार्टिन हीडेगर का मानना है मनुष्य ही अस्तित्व रखता है क्योंकि मनुष्य में चेतना है। संसार के अन्य प्राणी चेतनाविहीन होने के कारण अस्तित्व नहीं रखते। जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार व्यक्ति अपनी रूचि-अरूचि के अनुसार, विभिन्न तरह के लक्षण अपना लेता है। जब कभी भी जिस भी उम्र में हम अपने बारे में सोचने-समझने लगते हैं, तो उम्र के साथ ही हम चाहे-अनचाहे अपना व्यक्तित्व भी बनाने लगते है। वे कहते है कि हमारे मौलिक वास्तविक अस्तित्व के अतिरिक्त भी, एक इच्छा या चाह है, और हम उसे पूरा करना चाह रहे हैं, वह पूरी नहीं होती और फिर हमें दुःख होता है। हम अपनी वास्तविकता से, विचारों से एक कृत्रिम व्यक्तित्व, आदर्श या लक्ष्य गढ़ते हैं जो कि अहं की होता है। इस लक्ष्य प्राप्ति की राह पर चलने से ही दुःख होता है। अपने मूल स्वरूप, वास्तविक अस्तित्व के अतिरिक्त खुद को किसी भी अन्य कृत्रिम रूप में जानने, पहचानने, उसके बारे में विचार करने में ही दुःख का बीज छिपा है। जब हमारे विचार, अपने बारे में कोई कृत्रिम छवि गढ़ते हैं, तो हम दुःख का बीज बोते है। जब हम अपनी छवि को पालते-पोसते हैं, तो दुःख को पालते-पोसते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को निश्चय ही स्वीकार करना चाहिए, चाहे कोई बात कितनी भी अशुभ क्यों न हो, उसका वर्तमान अस्तित्व उसकी स्वयं की मृत्यु, उसके स्वयं के अस्तित्व की समाप्ति आदि।

जे.कृष्णमूर्ति जी चिन्ता, मृत्यु एवं अस्तित्व को परिभाषित करते हुए कहते है कि चिन्ता जीवन की परिस्थितियों में किसी अनिश्चितता के परिणाम के प्रति चिन्तित होना नहीं है बल्कि यह सामान्य मनोवैज्ञानिक चिन्ता है। उन्होंने ने मृत्यु से सम्बन्धित सरलतम बात यह कहीं है कि प्रत्येक मनुष्य को स्वयं अपने लिए मृत्यु का व्यक्तिकरण अवष्य कर लेना चाहिए। हम जानते है कि हमारे जीवन में तरह-तरह के दुःखों का अस्तित्व है। भले ही हम इनमें से होकर वास्तव में नहीं गुजरे हो परन्तु यदि हम सजग रूप से देखे और जीवन के प्रति सचेत रहे तो हम साफ देख पाते है, कि इनका अस्तित्व बना ही रहता है, परन्तु फिर भी अधिकतर हम लोग इन दुःखों से पलायन ही करना चाहते है। दुःख से पलायन करते हुए हम मिथकों और प्रतीकों में उलझ व भटक जाते है और इसीलिए यह जानने का कभी प्रयास तक नहीं करते कि दुःख का कोई अंत है भी नहीं।

परम मुक्तिवादी दर्शन के सम्बन्ध में विचार: परम मुक्तिवादी दर्षन मानव मन के मूलभूत परिवर्तन में विश्वास करता है। तथा मानव मन के इसी परिवर्तन में नूतन संस्कृति एवं नूतन विश्व की रचना करना चाहता है। जे.कृष्णमूर्ति जी इस दर्शन के बहुत बड़े समर्थक रहे। उनका कहना था कि मुक्ति कोई प्रतिक्रिया नहीं है-ना ही कोई चुनाव या पसंद है। यह आदमी का ही दिखावा है कि-क्योंकि वह चुन रहा है, इसलिए वह मुक्त है। मुक्ति विशुद्ध अवलोकन है, बिना किसी दिशा या कारण के, बिना किसी सजा या दंड के भय या ईनाम के मुक्ति का कोई निहितार्थ या उद्देश्य भी नहीं होता ऐसा नहीं है कि जब किसी मनुष्य का पुरा विकास हो जाता है तो, मनुष्यत्व का चरम आ जाता है तब वो मुक्त हो जाता है पर उसके अस्तित्व के पहले कदम पर ही मुक्ति भी निहित है। मुक्ति हमारे दैनिक जीवन, उसकी गतिविधियों को बिना पसंद-नापसंद के या चयनरहित होकर देखने या अवधान ध्यान में रहने में पाई जाती है। मुक्ति के लिए हमें उस बुनियाद को ही उखाड़ फेंकना है जिस पर भय का सारा ढ़ाँचा खड़ा है, जहाँ से हमारे सारे टकराव पैदा होते हैं, अपने वजूद की जड़ों से जहाँ ये भयानक टकराव छिपे हैं, सुख के पीछे की यह डरावनी दौड़ जहाँ से शुरू होती है, सारे देवी-देवता अपने पंडे-पुजारियों और चर्च व मठों समेत जहाँ से निकले है, इन सब से मुक्त होना ही वास्तव में मुक्ति है। अर्थात् उनका मानना था कि मुक्ति सिर्फ ऊपरी नहीं होनी चाहिए बल्कि मुक्ति आन्तरिक होनी चाहिए। मुक्ति के संबन्ध में जे.कृष्णमूर्ति का मानना था कि जब तक मनुष्य विचार के ही दायरे से सरगर्मी करता है तब तक कोई मुक्ति संभव नहीं। मुक्ति क्या हे इसके बारे में सीखने के लिए विचार को पूरी तरह मौन होना होगा। मुक्ति की अंतदृष्टि में समय नहीं लगता, अगर विचार कार्यरत है, विचार की कोई तरंग जो कहती है कि 'मुझे मुक्ति को समझना ही होगा तो आप मुक्ति में अंतदृष्टि नहीं पा सकते। क्योंकि विचार से मुक्ति में जब अंतदृष्टि मिलती है तब उस मुक्ति में विचार तर्कपूर्ण ढंग से काम कर सकता है, समझदारी से, निष्पक्ष होकर, व्यक्तिगत दायरे से ऊपर उठ कर। क्योंकि मुक्ति आधी-अधूरी या सापेक्ष नहीं होती, पूर्ण मुक्ति तभी आती है जब मन विचार को समझ लेता है, उसकी सही जगह को समझते हुए उससे मुक्त हो जाता है।

परम मुक्तिवादी दर्शन एक ऐसा दर्शन है जो मानव मन के मूलभूत परिवर्तन में विश्वास करता है। तथा मानव मन के इसी परिवर्तन में विष्वास करता है तथा मानव मन के इसी परिवर्तन में नूतन संस्कृति एवं नूतन विश्व की रचना करना चाहता है। परम मुक्ति जिसकी हम उम्मीद करते है वो कुछ ना कुछ करने से ही मिलेगी। जे.कृष्णमूर्ति जी समझाते है कि जब आप यह कहते है कि 'मैं गुस्से से मुक्त होना चाहता हूँ; तो यह एक प्रतिक्रिया ही है, यह गुस्से से मुक्ति तो नहीं है। एक ऐसी भी आजादी है जो किसी चीज से नहीं, किसी दूसरे से नहीं, जिसका कुछ कारण नहीं, लेकिन वह मुक्ति की अवस्था है।उन्हांेने आगे कहा है कि सत्य का परिसीमन ही जीवन का बन्धन है। सत्य क्या है, इसे समझने के लिए, मन को प्रतिमानों-प्रारूपों से स्वयं को मुक्त कर लेना होगा। ऐसा मन एक निश्चल मन होता है, और तब वह जो सर्जनशील है, अपनी स्वतः की गतिविधि का सर्जन कर सकता है। लेकिन बात ऐसी है कि

www.ignited.in

हममें से अधिकतर, प्रतिमानों से कभी मुक्त नहीं हो पाते। न तो इस जगत् में, कभी ऐसा क्षण नहीं आता, जब मन भय से, अनुरूपता से, कुछ बनते रहने की इस आदत से पूर्णतया मुक्त हो। जब किसी भी दिषा में कुछ बनने की प्रक्रिया पूरी तरह से समाप्त हो जाती है, तब वह जो ईश्वर है, सत्य है, आविर्भूत होता है और एक नूतन प्रारूप अपनी ही एक संस्कृति का सर्जन करता है।

मानवतावादी शिक्षा दर्षन के सम्बन्ध में जे.कृष्णमूर्ति के विचार:-

मानवतावाद वह दर्शन है जिसमें मनुष्य को केन्द्र बिन्दु माना गया है। यह मानव के सम्मान एवं आदर में आस्था रखता है। यह मानवता तथा सत्यान्वेषण के साधन रूप विज्ञान में आस्था रखता है। इस दर्शन के अनुसार मनुष्य अपनी बुद्धि के उपयोग द्वारा लोकतान्त्रिक शक्ति की सहायता से स्वतः अपने हित के लिए एक तर्कसंगत सभ्यता का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार मानववाद का विषय-क्षेत्र रक्त-माँस का बना सांसारिक मानव है। मानववाद को विकासात्मक, इन्द्रियानुभववाद तथा वैज्ञानिक मानववाद के नामों से पुकारा जाता है। मानवतावाद के सम्बन्ध में वे कहते है कि वर्तमान युग मशीनी युग के रूप में प्रतिस्थापित हो रहा है ऐसी परिस्थिति में मानव का महत्व धीरे-धीरे गौण रूप में होता जा रहा है। इसी के परिणामतः इस वाद का उदय हुआ। आज के युग में इसकी आवष्यकता भी महसूस की जा सकती है। क्योंकि वर्तमान युग में व्यक्ति, व्यक्ति को महत्व न देकर धन, वैभव, शिक्षा, पद-प्रतिष्ठा आदि को महत्व दे रहा है जिसके कारण मानव की महत्ता कम होती जा रही है। लेकिन वास्तव में यह सम्पूर्ण संसार मानव के विचारों से ही निर्मित है।

जे.कृष्णमूर्ति जी मनुष्य को पूर्ण स्वतन्त्र प्राणी घोषित करते है, उनका मानना था कि मानव अपने भाग्य का निर्माता स्वयं मानते है, अर्थात् मानव अपनी इच्छा के अनुसार भाग्य का निर्माण कर सकता है। इन्होंने मानवतावाद को अनेक रूप में व्यक्त किया। जिसमें धर्माश्रित मानववाद, सृजनात्मक मानववाद विरोचित मानवतावाद, आदि को व्यक्त किया। धर्माश्रित मानवतावाद को स्पष्ट करते हुए इन्होंने बताया कि मानव कल्याण के लिए धर्म एक सहयोगी के रूप में सहायक सिद्ध होता है। क्योंकि वास्तव में धार्मिक पूजा न केवल ईश्वर की ही पूजा है अपितु निःसहायों, गरीबों और मानववाद की सेवा है। विरोचित मानवतावाद के सम्बन्ध में जे.कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि मनुष्य विरोचित जीवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। लेकिन वीरता का तात्पर्य कमजोर व्यक्ति को दबाने से नहीं बल्कि गलत कार्यों का डटकर मुकाबला करने से है।

सृजनात्मक मानवतावाद का सम्बन्ध वास्तव में मनुष्य में तर्क प्रणाली के द्वारा नहीं बल्कि आत्मानुभूति से है। मानव द्वारा प्रकृति में अपनी उपयोगिता और सौन्दर्यमूलक प्रयोजन के लिए परिवर्तन व्यक्ति की सृजनषीलता को प्रकट करते है। मनुष्य का अपने जीवन में परिवर्तन चाहना, दूसरे साथियों के साथ समाज में बैठना, साहित्य पढ़ना यात्रा के प्रति प्रेम आदि इसी के कारण होते है। मानवतावादी दर्शन मानव-केन्द्रित है, जिसका लक्ष्य नियति को उच्चतर बनाने, मानव-समाज को उत्तम जीवन जीने योग्य बनाना तथा मानवीय समस्याओं को समझकर उनके निरन्तर हल के लिए मानव को तैयार करना है। मानवतावाद के अनुसार मानव इस सृष्टि का एक अंग है तथा सृष्टि के विकास की सतत् प्रक्रिया का फल है। विश्व की सृजनात्मक शक्तियों का उच्चतम परिणाम मानव है, जिससे ऊपर और कुछ नहीं है, केवल उसकी आकांक्षाएँ है।

जे.कृष्णमूर्ति का मानना है कि मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य में स्वतंत्र है। मनुष्य चाहे जिस देष, जाति, रंग या धर्म का हो सबकों समान आर्थिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का अधिकार है तथा उन्नति के रास्ते सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से खुले होने चाहिए। इनके अनुसार मानवतावाद सर्वकल्याण में विश्वास करता है। ये कहते थे कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास अन्य व्यक्तियों के कल्याण के माध्यम से ही कर सकता है।उसे इस बात की चिंता नहीं होती कि कौन ऊँचा है और कौन नीचा है, उसके लिए न समानता है न असमानता है, क्योंकि वह सिर्फ मनुष्य से प्रेम करना जानता है। और सही अर्थों में यही मानवतावाद है।

मानव एवं उसकी परमागति के सम्बन्ध में विचार:-

जे.कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि संसार में मानव की वर्तमान सत्ता ही सब कुछ नहीं है बल्कि इससे आगे भी बहुत कुछ है जिसे पाना मनुष्य का लक्ष्य होता है। जिसे हम दूसरे शब्दों में उच्चतम परमागति की संज्ञा दे सकते है। जे.कृष्णमूर्ति जी मानव एवं मानवता के लिए विशेष सहानुभूति रखते थे। वर्तमान में मनुष्य अपनी प्रगति से संतुष्ट नहीं है। मानव की परमागति ही यह स्पष्ट करती है कि उनका दर्षन बौद्धिक नहीं बल्कि व्यवहारिक है। जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार मनुष्य को स्वयं को धीरे-धीरे विकसित करते हुए महामानवता की धारा को प्राप्त करना होगा। महामानवता को प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य और मानव की परिणति है। लेकिन यही पर मनुष्य का विकास समाप्त नहीं होता क्योंकि यह तो निरन्तर चलता रहता है।

जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार विकासवाद की तीन मुख्य विशेषताएँ होती है- विस्तारण, उध्र्वीकरण एवं समग्रीकरण। विस्तारण का अर्थ विभेदीकरण, संगठन तथा अभिव्यक्ति की विविधता के संगठित तथा जटिल हो जाने पर उससे जीवन प्रकट होता है।

इसी प्रकार जीवन में शरीर के अधिकाधिक जटिल हो जाने पर मन प्रकट होता है, परन्तु साथ ही उध्र्वीकरण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। उध्र्वीकरण का अर्थ फैलाव या विस्तार नहीं है बल्कि चेतना का एक-दूसरे स्तर पर आरोहण है परन्तु विकास प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण विषेषता है उसकी समग्रता एवं अखण्डता। इसके फलस्वरूप निम्न तत्व का विकास होने पर वह भी नष्ट नहीं हो पाता, अपितु उच्चतर तत्व से वह जीवन्त हो उठता है। जैसे-जड़ पदार्थ से जीवन के प्रकट होने पर उसका अस्तित्व नहीं मिटता और न ही जीवन नष्ट होता है। जबकि पाश्चात्य विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार उच्चतर तत्वों का आविर्भाव होने पर निम्नतर तत्वों का लाभ होना या अपनी पूर्व की स्थिति मंे बना रहना अनिवार्य है। भारत का अद्वैत दर्शन भी इसी दोश से दूषित है क्योंकि इसके अनुसार मानव को विकास के निमित्त आत्मा से शरीर तथा जीवन के निम्न तत्वों को पृथक कर देना चाहिए।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन जे.कृष्णमूर्ति के षिक्षा दर्शन और दार्शनिक विचारों से सम्बन्धित है। प्रस्तुत अध्ययन में कृष्णमूर्ति जी के सम्पूर्ण शैक्षिक दर्शन एवं दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है तथा इसके अन्तर्गत कृष्णमूर्ति जी के दर्षन की विशेषताएँ, उनके सत्य की खोज सम्बन्धी विचारों, सत्य के सम्बन्ध में विचार, कृष्णमूर्ति जी के आत्मज्ञान और ईष्वर सम्बन्धित विचार, और आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनावाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, परम मुक्तिवाद, मानवतावाद, तथा मानव एवं उसकी परमागति के सम्बन्ध में विचारों की व्याख्या की गई है। जिससे उनके सम्पूर्ण शिक्षा दर्शन और दार्शनिक विचारों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ

1- सिंह, डॉ.बिजेन्द्र, त्यागी ओंकार सिंह, “उदीयमान भारतीय समाज में षिक्षा”, अरिहंत शिक्षा प्रकाषन 50, प्रताप नगर, टोंक फाटक, जयपुर।

2- कृष्णमूर्ति जिद्दू, “ईश्वर क्या है?” प्रथम संस्करण-2008, राजपाल एण्ड सन्ज, 1590 मदरसा रोड़, कश्मीरी गेट दिल्ली।

3- माथुर, डॉ.एस.एस (2009), “शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार” पंचम-संशोधित संस्करण विनोद, पुस्तक मन्दिर आगरा।

4- टिकेकर, इन्दु (2011) “जे.कृष्णमूर्ति जीवन और दर्शन” दूसरा-संस्करण सर्व सेवा संघ-प्रकाशन राजघाट, वाराणसी।

5- त्यागी, जी.एस.डी., “शिक्षा के दार्षनिक एवं सामाजिक आधार” नवीनतम-संस्करण विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

6- पाण्डेय, डॉ.रामशकल (2008), “शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय दषम् संशोधित श्रेष्ठभूमि” संस्करण विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

7- कृष्णमूर्ति जिद्दू (2009), “जीवन और मृत्यु” प्रथम-संस्कार राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

8- कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन, वाराणसी-“स्वयं से संवाद” जनकी-जून 2017

9- कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया, वाराणसी-“जे.कृष्णमूर्ति परिसंवाद” सितम्बर, 2019

Corresponding Author

अशोक कुमार*

शोधार्थी, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अवलर (राज.)

www.ignited.in